REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 3 | DECEMBER - 2018

मुर्दहिया : यथार्थवादी दृष्टि का परिचय

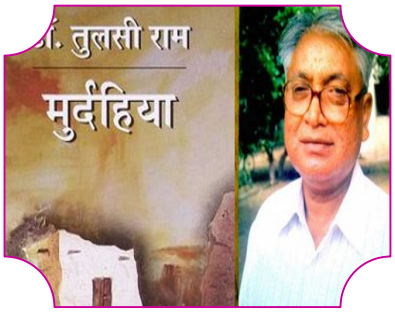

डॉ आभा एस. सिंह
सहायक आचार्य एवं प्रमुख, हिन्दी विभाग ,
वी. एम. वी. कॉमर्स, जे. एम. टी. आर्ट्स व
जे. जे. पी. साइन्स कॉलेज ,वर्धमान नगर, नागपुर.

हिंदी में अनेक साहित्यिक आंदोलन हुए लेकिन संत साहित्य के पश्चात् एक दलित आंदोलन ही ऐसा है जिसने साहित्य और विमर्श की जमीन को पूरी तरह बदलकर रख दिया है। वैसे साहित्य की पृष्ठभूमि बदलती रही है और अपने बदलते स्वरूप में दलित साहित्य जिस सरोकार से बढ़ रहा है उसमे सबसे महत्वपूर्ण है उसमे जन्मे 'नकार' का साहस, संघर्ष और बराबरी के हक की मांग। दलित साहित्य के यथार्थवादी प्रस्तुतीकरण ने पाठक को श्रम की अमानवीयता, मरे हुए जानवर के मांस और गोबर से बीने हुए गेंहू की रोटी के अलावा न जाने कितनी चिजों से अवगत कराया। यह कभी बहस से घबराकर हटा नहीं परंतु हर समय अपनी जांच हेतु प्रस्तुत रहा। समय के साथ–साथ दलित साहित्य को एक नई ऊंचाई प्राप्त हुई है और इसका दायरा भी बढ़ता गया जिसका सबसे बड़ा कारण इसमे आए दिन नए–नए अनुभवों का जुड़ते जाना है। सांस्कृतिक और साहित्यिक स्तर पर जो विविधता इस सदी ने देखी उसमे दलित साहित्य का बहुत बड़ा योगदान है।

धर्म के द्वारा कुचले गए व्यक्ति को साहित्य ने दबने नही दिया और उसका सच, उसका जीवन सबके सामने ले आया, उसमे विद्रोह का स्वर भरा और दलित साहित्य सबके सामने आया जिसकी प्रेरणा का दृ ष्टिकोण मानवीय है। कथा, कविता, नाटक, उपन्यास, आत्मकथन आदि के द्वारा दलित साहित्य अभिव्यक्त हुआ है। एक तरह से दलित साहित्य अर्थात आदमी को मनुष्य समझकर खुली हवा में सांस लेने देने के अधिकार का ही दूसरा नाम है जो बेबाकी से आगे बढ़ता हुआ आत्मनिर्भर हो गया है।

जिस तरह से दलित साहित्य भोगे हुए की अभिव्यक्ति है ठीक उसी तरह कालजयी रचना में काल की सच्चाई का होना अनिवार्य माना गया है। कालगत जीवन और व्यक्तिगत मन के साथ–साथ सामाजिक उन्नयन के भाव ही कालजयी रचना के मूल आधार है। पाठक को प्रभावित करनेवाली रचना तो प्रिय होती ही है परंतु धीरे–धीरे सामाजिक मूल्यों के मानक उसे कालजयी बनाते है। और जब बात दलित साहित्य की कालजयी रचनाओं की करे तो दलित आत्मकथाएं बड़ी सफलतापूर्वक अपनी उपस्थिति दर्ज कराती है।

मुर्दहिया दलित साहित्यकार डॉ. तुलसिराम की आत्मकथा है जिसमे लेखक ने कई वर्षों से दलित आत्मकथाओं के लिए साहित्य जगत के बंधे–बंधाए मानकों को तोड़कर अपने जीवन के सच्चे और कड़वे यथार्थ को सबके सामने उजागर किया। ऐसा नही है कि मुर्दहिया हिंदी में किसी दलित लेखक की पहली या सर्वश्रेष्ठ आत्मकथा थी बडी बात यह है जिस निर्लिप्तता और मार्मिकता के साथ तुलसीरामजी ने अपने बचपन के अनुभवों का बेबाक वर्णन किया वह उसे विशिष्ट बनाता है।

'मुर्दहिया' के संदर्भ में सारे विद्वान लगभग एकमत है कि यह ग्रामीण भारत की जटिल संरचना का यथार्थ चित्रण है। इसमे जमीन, जाति और वर्ग, परिवार और कुल, उत्पादन प्रणाली, शिक्षा, लोक साहित्य–संस्कृति, कला, आस्था यानी हिंदी इलाके में गांवो की जो स्थिति थी उसका यथार्थ चित्रण बिना किसी आवरण, दुराव–छिपाव, अतिरिक्त साज–श्रृंगार या बनावट के हुआ है। गांवो को देखने की कई विचार–सरणियां आज भी विद्यमान है। गांवो को देखने के सभी के तरीके भी अलग–अलग है, परंतु जिस नजर से तुलसीराम ने अपनी मुर्दहिया को देखा उसमे केवल यथार्थ है।'[1]

मुर्दहिया पूर्वी उत्तर प्रदेश के ग्रामीण अंचल में शिक्षा के लिए जूझते एक दलित की मार्मिक अभिव्यक्ति है जहां समाजिक, धार्मिक, आर्थिक विसंगतियां कदम–कदम पर दलित का रास्ता रोक कर खड़ी हो जाती है और उसके भीतर हीनताबोध पैदा करने के तमाम षडयंत्र रचती है लेकिन एक दलित संघर्ष करते हुए इन तमाम विसंगतियों से अपने आत्मविश्वास के बल पर बाहर आता है और जे. एन. यू. जैसे विश्वविद्यालय में विदेशी भाषा का विद्वान बनता है और लेखक का इस दिशा में बढ़ने का सफर ही एक गंभीर सरोकार को प्रस्तुत करता है जिसे पाठक और आलोचक दोनो स्वीकार करते है।

तुलसीराम मुर्दहिया की भूमिका में लिखते है कि, 'मुर्दलिया हमारे गांव धरमपुर (आजमगढ़) की बहुद्देशीय कर्मस्थली थी। इतना ही नही स्कूल हो या दुकान बाजार हो या मंदिर, यहां तक की मजदूरी के लिए कलकत्ता की गाड़ी पकड़नी है सभी के लिए मुर्दहिया से गुजरना पड़ता था। हमारे गांव की जिओ–पालिटिक्स यानी 'भू–रातनीति' में दलितों के लिए मुर्दहिया एक सामरिक केंद्र जैसी थी। जीवन से लेकर मरन तक की सारी गतिविधियां मुर्दहिया समेट लेती थी। सबसे महत्वपूर्ण यह है कि मुर्दहिया मानव और पशु में कोई फर्क नही करती है।'[2]

अंतिम वाक्य से स्पष्ट होता है कि मुर्दहिया तो पशु और मनुष्य में भेद नही करती परंतु समाज भेद करता था इसलिए मुर्दहिया लेखक के लिए समाज से बडी और जीवन का अति महत्वपूर्ण अस्तित्व थी। तभी तो एक स्थान पर तुलसीरामजी लिखते है –

'मुर्दहिया न जाने कितने वर्षों से अनगिनत लोगों के दुःख–दर्द को जलाकर राख करती आ रही थी और न जाने कितने लोगों के दुःख को अपनी धरती में दफना दिया था और आगे भी इन दुःखों को जलाती दफनाती रहेगी। उस दिन मुझे भी बड़ी गहराई से अनुभूति हुई कि मेरे अंदर भी एक मुर्दहिया जन्म ले चुकी थी जिसमे भविष्य के न जाने कितने ही दुःख–दर्द को जलाकर राख करती आ रही थी। और न जाने कितने लोगों के दुःख को अपनी धरती में दफना लिया था और आगे भी इन दुःखों को जलाती–दफनाती रहेगी। उस दिन मुझे भी बड़ी गहराई से अनुभूति हुई थी कि मेरे भी अंदर एक मुर्दलिया जन्म ले चुकी थी जिसमे भविष्य के न जाने कितने ही दुःख–दर्द जलने और दफन होने वाले थे।'[3]

मुर्दहिया अर्थात श्मशानभूमि जहां हर किसी का अंत होना तय है परंतु फिर भी मुर्दहिया लेखक के जीवन का विशेष हिस्सा बनकर रही। लेखक के अपने दलित जीवन के भोगे–देखे दर्द का वर्णन जिस स्पष्टता के साथ बिना आक्रोशित हुए किया वह इस आत्मकथा को अन्य आत्मकथाओं से अलग कर देती है। दलित साहित्य वैसे भी 'नकार' के साहस का नाम माना जाता है परंतु तुलसीरामजीने अपनी मानवनिर्मित पिड़ाओं को ईश्वर प्रदत्त चोला पहनाया गया है यह जानते हुए भी विद्रोह नही किया केवल वर्गित किया और उनका यही भव पाठक को झकझोर कर रख देता है और लेखक उसी संयम के साथ कहते जाते है। आत्मकथा की पहली ही पंक्ति में लेखक लिखते है कि, 'मूर्खता मेरी जन्मजात विरासत थी' यह वर्ण–व्यवस्था के पिढ़ीयों तक को अयोग्य समझने की मानसिकता पर कि गई चोट नही है तो और क्या है।

दलित साहित्य और आत्मकथा दोनों ही रूपों में यदि मुर्दहिया को देखा जाए तो वेदना इसका प्रधान गुण कही जा सकती है परंतु वेदना भी कैसी वो जो लेखक की कलम से जन्म लेकर पाठक के ह्रदय में आसरा पाती है। 'दलित बंधुओं के जीवन को तथाकथित उच्चवर्णियों ने जो स्वघोषित श्रेष्ठ कहलाते थे 'उध्वस्त' कर दिया था। यहा तक की थूकने के लिए उनके गले में मटका बांध दिया गया तथा चलने पर उनके पांव के निशान रास्तों पर ना रहे इसलिए उनकी कमर में झाडू लटका दिया। सुबह–शाम घूमने के लिए दलितों को मना कर दिया गया क्योंकि सूरज की छांव दूर तक फैलती है। धर्म के नाम पर जितना शोषण दलितों का हुआ उतना पूरी दुनिया में कहीं सुनाई–दिखाई नही देती। लेकिन यह सब कब तक होता सो विद्रोह हुआ और विद्रोह के स्वर ने वर्ण व्यवस्था को मानने से इंकार कर दिया।'[4]

दलितों के विद्रोह के स्वर ने ही दलित साहित्य में आक्रोश के स्वर को कायम रखा परंतु मुर्दहिया इस कसौटी पर अपनी पहचान अलग रखती है उसमे सम्मान के मार्ग से होते हुए आत्म–सम्मान तक पहुंचने की जिद दिखाई देती है। तुलसीराम अपनी आत्मकथा में लिखते है, 'हमारे धरमपुर गांव के सबसे उत्तर में अहीर बहुल बस्ती थी जिसमे एक घर कुम्हार, एक घर नोनिया, एक घर उत्तर में गड़ेरिया तथा एक घर गोड़ (भड़भूजा) का था। बीच में बभनौटी (ब्राह्मण टोला) तथा तमाम गांवों की परंपरा के अनुसार सबसे दक्षिण में

दलितों को बसाया जाता था अतः मेरे जैसे सभी लोग हमारे गांव में इन्ही महामारियों–आपदाओं का प्रथम शिकार होने के लिए ही दक्षिण की दलित बस्ती में पैदा हुए थे।'[5]

कितनी सरलतापूर्वक लेखक ने अपने लिए तय किए गए अच्छे–बुरे भविष्य का उल्लेख करते है जिसमे अच्छा तो शायद ही हो परंतु बुरे की तो प्रतिबद्धता थी ही थी।

वर्तमान के विमर्शों के दौर में दलित विमर्श व्यक्ति संघर्ष की कहानी बयान करते हुए स्त्री संबंधी दृष्टिकोण स्पष्ट करता है जिसकी छवि मुर्दहिया में भी है जहां तुलसीराम जो की अपनी दादी के अत्यंत करीब थे दादी का चित्रण किसी नायिका की भांति किया है दादी लेखक के लिए प्यार, ममता और स्नेह की मूर्ति है। वह लेखक की कई तरह की कहानियां तो सुनाती ही है साथ ही साथ उसके भविष्य की फिक्र भी करती है। वह कोई साधारण महिला नही है एक जुझारु स्त्री है जो अपने अधिकारों के लिए लड़ती है। बालक तुलसीराम को सर्वाधिक स्नेह अपनी दादी से ही मिला। तुलसीदास के ज्ञान विस्तृत करने में भी दलित समाज के समाजशास्त्रीय अध्ययनन की जिज्ञासा में दादी का गहरा योगदान रहा।

मुर्दहिया की कालजयी पहचान के लिए प्रमुखता से यह भी कहना अनिवार्य है कि लेखक ने पूरी आत्मकथा में कहीं भी स्वयं के जीवन और असहायता के स्वर को कर्कश नही होने दिया और उस समाज की विशेषताओं को भी रेखांकित कर दिया जो युगो से अयोग्यता की श्रेणी में अक्षम्य घोषित कर दिया गया था। अपने समुदाय में गुंजते गीत और 'कोहबर' कलाकृति के संदर्भ में लिखते है कि 'इन परम्पराओं से जाहिर होता है कि सदियों से चला आ रहा दलितों का यह बहिष्कृत समुदाय एक अलौकिक कला एवं संगीत का न सिर्फ संरक्षक रहा बल्कि उसका वाहक भी है। अशिक्षा के कारण लिपि का ज्ञान न होने के कारण दलित लोग संभवतः भारत के पहले व्यक्ति थे जिन्होने अभिव्यक्ति के लिए कोहबर पेंटिंग का सहारा लिया था।'[6]

तुलसीरामजी ने अपनी आत्मकथा के सहारे दलित समुदाय के कुछ अनछुए कोनों को चित्रित करने का साहस किया है जबकि आरोप तो यह लगते है कि दलित साहित्य और कुछ नही बल्कि अपने आक्रोश और अहंकार का विस्फोट है उसमे गहराई कहीं नहीं है इसके पात्र केवल परिस्थिति से संघर्ष करते है तथा वास्तविकता के नाम पर गाली–गलौच परंतु मुर्दहिया दलित साहित्य पर लगते इन आरोप या 'ऐसी ही होती है' कि मानसिकता को ही नकार देते है। वास्तविक जीवन की अभिव्यक्ति के संदर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते है कि –

'दलित लेखकों की यह कोशिश होती है कि वे अपने जीवन, अनुभवों, दृष्टिकोण, प्रतिक्रियाएं, सरोकार, आशय अपनी पूरी ईमानदारी के साथ मूल रूप में बिना किसी शास्त्रीय आवरण के सृजन में अभिव्यक्त करें। इसलिए उनकी भाषा में परिवेशवत संस्पर्श की अधिकता होती है जो उनकी अभिव्यक्ति को यथार्थवादी तो बनाती ही है साथ ही उसे जीवंतता भी प्रदान करती है।'[7]

मुर्दहिया दरअसल लोकजीवन में व्यतीत होते जीवन का वर्णन है इसलिए अपने परिचित का स्वर मुर्दहिया में बराबर बना हुआ है। एक–एक घटनाक्रम और व्यक्ति पाठक में आत्मपरिक्षण करने को मजबूर करता है। क्या किसी बालक के लिए 'अपशकुनी' और 'कनवा' की पीड़ा को सहन करना इतना आसान है जितनी आसानी से तुलसीराम ने किया है। अपनी ही नही तो मुसहर परिवार की पीड़ा तक को महसूस किया क्योंकि तकलीफ केवल अभाव नही अनुभव मे थी यह परिवार शादी ब्याह की झूठी पत्तलों में से झाड़कर भोजन इकट्ठा करते थे यह समाज की अमानवीयता नही तो क्या है?

समुदाय विशेष के बच्चों द्वारा पानी पिलाने के लिए किया जाने वाला भद्दा मजाक भी आज़ाद भारत की गुलाम सोच का चित्र खींच देता है पर तुलसीराम विनम्रतापूर्वक घटना का जिक्र करते है कि – 'हम अंजुरी मुंह से लगाए झुके रहते और वे बहुत ऊपर से चबूतरे पर खड़े–खड़े पानी गिराते वे पानी बहुत कम पिलाते थे किंतु सिर पर गिराते ज्यादा थे जिससे हम बुरी तरह भीग जाते थे। पानी पीना वास्तव में एक विकट समस्या थी।'[8] यह घटना आजाद भारत की है जहां संविधान द्वारा सभी को बराबरी का अधिकार दिया गया है, वहां पानी के लिए जाति की छुअन पूरी तरह असर रखती है जबकि छुआछूत मिटने का सभी बढ़–चढ़कर ऐलान कर चुके थे। इतना ही नही स्कूल में दलितों की बैठने की अलग कतार या पहली बार पाजामा पहनना भी उपहास का कारण बनता है।

तुलसीराम जी का व्यक्तित्व विभिन्न परिस्थितियों में ढ़लता गया, आकार ग्रहण करता गया जो उस समय के समाज का चित्र खिंचकर मुर्दहिया को साकार करता गया। मुर्दहिया में अनेक पात्र आते गए और लेखक उन

सबका स्वागत करते गए फिर वह चाहे दलित चेतना के संवाहक जेद्दी चाचा हो या सुदेस्सर पांडे या दोस्ती की बात कहकर दोस्ती का स्वागत पकोडे से करनेवाले देवराज सिंह। पर यही देवराज सिंह स्कॉलरशिप के लिए मिल पैसो मे से 81 रुपए की लूट करता है तो उसकी मित्रता पर संदेह स्वाभाविक है। परंतु लेखक फिर भी लिखते है कि, 'देवराज सिंह से कभी दुबारा मुलाकात नही हुई मगर कभी मिल गए तो मै उनका स्वागत पकौड़ियों से अवश्य करूंगा।' लेखक की यह सोच और जीवन के प्रति यह दृष्टि वास्तव में एक मौन प्रतिरोध है जो ऊंच–नीच वाली मानसिकता पर एक करारा थप्पड़ है।

डॉ. तुलसीराम परिवार में सबसे छोटे थे अपशकुनी घोषित थे तथा एक आंख से भी असहाय थे परंतु शिक्षा उनका सबसे बड़ा हथियार थी। ब्राह्मणों द्वारा दलितों की चिट्ठी पढ़ने से किया गया इंकार उन्हे स्कूल की राह में मोड़ देता है। प्रतिभा के बल पर वे सारे ठाकुर और ब्राह्मण सवर्णों को आए दिन पिटकर अव्वल आते तथा और मेहनत करने के लिए प्रेरित होते.

ऐसा नही है कि तुलसीराम के भीतर विद्रोह नही था पर अपने भीतर के असंतोष का वर्णन करते समय संकोच नही किया जब वे कहते है कि – 'सन 1961 के जाड़ो की बात है पिताजी मां को मारने के लिए फसही लेकर दौड़े मै वहीं खड़ा था मैने बहुत जोर से पिताजी को एक तमाचा मारा।'[9]

इस घटना के बाद पिता द्वारा लेखक को भी मार पड़ी परंतु उन्होने दुबारा मां को मारने का साहस नही किया। इस घटना ने स्पष्ट कर दिया की लेखक के भीतर अन्याय को अस्वीकार करने की जिद अत्यंत स्पष्ट है इतना ही नही तो अपने आक्रोश को सही दिशा में ले जाने का निर्णय उन्हे विशेष बनाता है और इसलिए वें लड़ाई का नहीं अपितु पढ़ाई का मार्ग चुनते है।

मुर्दहिया केवल दलित समाज के किसी व्यक्ति के जीवन का चित्रण नही है बल्कि वह शिक्षा के द्वारा उस जीवन में आने वाले परिवर्तन का साक्षात्कार भी है। मुर्दहिया केवल एक आत्मकथा नही है अपितु एक ऐसा चलचित्र है जिससे हर दलित पात्र एकाकार हो जाता है। अधिक महत्वपूर्ण वह विचार है जो लेखक ने शिक्षा के जरिए बताया क्योंकि शिक्षा से अर्थतंत्र बदलता है और अर्थतंत्र से सामाजिक संरचना फिर यह आवश्यक ही नही की कोई दलित उपेक्षा का पात्र रहे।

मुर्दहिया बंधे–बंधाए मानको को तोड़कर स्वयं एक मानक स्थापित करती है, यह स्पष्ट करती है की यथार्थवाद की सहायता से केवल सृजन नही किया जा सकता बल्कि इससे घटना पर आस्था निर्माण करने का नजरिया भी मिलता है यह आत्मकथा होते हुए भी किसी एक व्यक्ति तक सिमित नही रहती बल्कि पूरे एक समाज के यथार्थ को अभिव्यक्ति देती है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1) बया पत्रिका–लेखक–तुलसीराम की आत्मकथा यानी यथार्थवाद की विश्वसनीय वापसी लेखक–बसंत त्रिपाठी
2) मुर्दहिया – लेखक – तुलसीराम पृ. क्र. – 03
3) वही – लेखक – तुलसीराम पृ. क्र. 10
4) आकार पत्रिका – लेखक – यशवंत पृ. क्र. – 52
5) मुर्दहिया – लेखक – तुलसीराम पृ. क्र. – 42
6) वही – लेखक – तुलसीराम पृ. क्र. – 162
7) आलोचना पत्रिका – दलित साहित्य : आलोचना का संकट, लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ. क्र. – 101
8) मुर्दहिया – पृ. क्र. – 54
9) वही – पृ. क्र. – 126